Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

# श्रीमद्भगवद्गीता का योग आधारित साधना पक्ष

**डॉ. माधवी चन्द्रा**
**योग विभाग**
**बरकतउल्ला विश्वविद्यालय,**
**भोपाल, मध्य प्रदेश, भारत।**

**Article Info**
Volume 4, Issue 2
Page Number : 01-06

**Publication Issue :**
March-April-2021

**Article History**
Accepted : 01 March 2021
Published : 03 March 2021

**साराश** – श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने परम कल्याण की प्राप्ति हेतु मनुष्यों के लिये कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग के रूप में तीन प्रकार के साधनों का अनुष्ठान करने की विधि बतायी है। श्रीमद्भगवतगीता के प्रथम छः अध्याय में कर्म अगले छः में भक्ति तथा अंतिम छः में ज्ञानयोग की चर्चा की गई है। ज्ञानयोग एवं भक्तियोग की प्राप्ति कर्मयोग के आधार पर ही है। अतः कर्म की अवहेलना कर भक्ति और ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता है। आध्यात्मिक साधनाओं का एकमेव लक्ष्य है ''मोक्ष की प्राप्ति'' करना।

**मुख्य शब्द** – श्रीमद्भगवद्गीता एवं साधना पक्ष।

## I. INTRODUCTION

**प्रस्तावना** – आध्यात्मिक साधना का लक्ष्य सदैव एक ऐसा आन्तरिक संतुलन है जहाँ वैयक्तिक चेतना विश्व चेतना से एकाकार हो जाती है। परिणामतः अजस् आनन्द और शान्ति की उपलब्धि होती है जिसके कारण बाह्य घटनाओं के प्रभावों से मानव का तन और मन आंदोलित नहीं होता। तन और मन का यह स्थैर्य ही समाधि कहा जाता है। यह किसी साधक की मानवीय चेतना की अन्यतम उपलब्धि है। इसे ही पराचैतन्य अथवा स्थितप्रज्ञ की स्थिति कहा जा सकता है। इस स्थिति में नियंत्रण प्राप्त करने पर क्रमशः चित्त के विभिन्न स्तरों के पार कर लेता है।

पुरातनकाल से चित्त की इस दशा को प्राप्त करने के लिए विभिन्न अनुशासन प्रयोग में लाये जाते रहे हैः जिन्हें उपासना अथवा साधना की संज्ञा से अभिहित किया गया है। साधना की इन प्रणालियों में पॉच अनुशासन ख्यातिप्राप्त हैं, जिन्हें हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के रूप में जाना जाता है।

**विषय प्रवेश** – परमात्मा ने अत्यन्त दुस्तर भवसागर को पार कर स्वयं के परम् कल्याण की प्राप्ति के लिये कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के रूप में तीन प्रकार के साधनों का अनुष्ठान करने की विधि बतायी है। अधिकारी भेद से

**Copyright: ©** the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

इन तीनों मार्गों की व्यवस्था की गयी है इनके अतिरिक्त मानव के आत्यन्तिक कल्याण के लिये कोई दूसरा उपाय सहज उपलब्ध नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण ने नर से नारायण बनने की साक्षात् विधि बताने के उद्देश्य से अर्जुन रूपी नर को निमित्त बनाकर इन्हीं तीनों योगों का उपदेश श्रीमद्भगवद्गीता में दिया है।

**कर्मयोग–** समत्व और प्रज्ञत्व को प्राप्त करने की दिशा में पहला चरण कर्मयोग का है। स्वामी विवेकानन्द का अभिमत है कि ''हमें योगमय'' होकर कर्म करना चाहिये। गीता हमें कर्मयोग की शिक्षा देती है। योगमय होकर किए गए कर्म में अपरा प्रकृति का किंचितमात्र योग नहीं होता है। योगवत् कर्म में कर्तापन का भाव नहीं होता। पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार यदि अहंकार का भाव ही नहीं रहेगा तो कोई कार्य कैसे हो सकेगा। भारतीय सम्भ्यता के अनुसार योगस्थ होकर कर्म किया जाता है तब अहंकार विलुप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति कर्म को कुशलता, दक्षता और लगन से सकारात्मक रूप से संपादित करती है। परिणामस्वरूप कर्म की पूर्णता अपने चरम सौष्ठव पर होती है। इसी को गीता गायक श्रीकृष्ण ''योगः कर्मसुकौशलम्'' की विभूति से अभिहित करते हैं। इसी कौशल की प्राप्ति के लिये गीता में बताया गया है :–

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफल हेतुभूर्मा ने संगोहस्त्वकर्मणि। (2/47)**

उक्त श्लोक के माध्यम से समझेंगे –

1. ''कर्मण्येवाधिकारस्ते'' कर्म पर तेरा अधिकार है अर्थात् कर्म करने का, श्रम का अधिकार।
2. ''मा फलेषु कदाचन'' अर्थात् फल पर तेरा अधिकार कदापि नहीं।
3. ''मा कर्मफल हेतुः भूः'' अर्थात् कर्मफल को निमित्त मत बनाओ, कर्मफल की वासना वाले मत बनो।
4. ''मा ते संगः अस्तु अकर्मणि'' अक्रियता में तेरी आसक्ति न हो, अर्थात् निरासक्त हो।

अतः उक्त श्लोक कर्मयोग को पूर्ण वाचकता प्रदान करते हैं। इनमें से एक पर भी आचरण किया जा सके तो योग की प्राप्ति हो जाती है। अतएव गीताकार अर्जुन को सीधा अनुदेश के भाव में परामर्श देते हैं – कि कर्म करो? कर्म में आसक्ति का त्याग करो, सिद्धि और असिद्धि में संतुलित रहे। सिद्धि और असिद्धि में समान भाव रहना ही समत्व है और यही समत्व योग है। गीता का कर्मयोग कर्तव्य कर्म को निष्काम बुद्धि से करने की सीख देता है।

**ज्ञानयोग –** संख्ययोग ज्ञानयोग का प्रतिपादक है किन्तु गीता प्रतिपादित ज्ञानयोग उससे इस अर्थ में भिन्न है कि वह सांख्य के प्रकृति–पुरूष के विवेक ज्ञान को मोक्ष का साधन मानने की बजाय आत्मा की एकता को मोक्ष का आधार मानता है। स्वामी रामसुखदासजी कहते हैं – ''क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ तथा प्रकृति–पुरूष के विवके ज्ञान द्वारा प्राकृत पदार्थ, क्रिया आदि से अपने को सर्वथा अपरा समझना, इंद्रियों ही इन्द्रियों के विषय में बरत रही हैं, सारी क्रियायें केवल प्रकृति के द्वारा ही हो रही हैं, गुणों के सिवा कोई कर्ता नहीं है – इस प्रकार समझकर अपने अपने स्वरूप

को गुणों, कर्मो और पदार्थो से सदा निर्लिप्त अनुभव करना तथा परमात्मा के साथ अभिन्न भाव से नित्य निरन्तर स्थित रहना ही ज्ञानयोग है।''

गीता के द्वितीय अध्याय में जीवनोत्कर्ष आधारित कथन दिया गया है। कि जिनमें वांछित साहस और मनोबल होता है, वही गीता के संदेश को आत्मस्थ करने में समर्थ हो सकता है।

आसक्ति चित्त वाले इस ज्ञान को समझने में असमर्थ हैं। सत्य का साक्षात्कार करने के लिये चित्त का शान्त एवं स्थिर होना आवश्यक है। अर्जुन विषादग्रस्त है। इसलिये सर्वप्रथम चित्त आधारित अज्ञान को दूर कर उसको चित्त स्थिर का ज्ञान का संदेश दिया गया। तत्पश्चात अर्जुन ने कहा –

**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध्वात्पप्रसादान्मयाच्युत।**

**स्थितो·स्मि गत सन्देहः करष्येिवचनं तव।। (18/73)**

**ज्ञान**योग का तात्विक सत्व इन्हीं दो शब्दों में 'अज्ञानसंमोहः प्रनष्टः' (18/72) और गत सन्देह' में विनिर्दिष्ट है। ज्ञान वह साधन है जो मोह का नाश करता है, स्मृति की पुनर्रचना करता है। सन्देह से मुक्त कर प्राकृत रूप में स्थापित करता है। ऐसी स्थिति में जो महापुरूषों और गुरूजनों द्वारा करने योग्य कहा गया है, वही करने की संकल्पशक्ति आ जाती है। यहॉ स्मृति शब्द महत्वपूर्ण है जो जीव को प्रकृतिस्थ करता है। अर्जुन जोर देकर कहता है – मेरा मोह नष्ट हो गया है, मेरी आत्म्स्मृति लौट आई है। जिस आत्मविस्मृति के कारण जीव अनेक बार इस संसार में आता और जाता है, आज वह विस्मृति दूर हो गई। नाम रूप युक्त तन स्वप्न दर्शन के समान है और केवल अज्ञान से उत्पन्न होता है, आज वह मोह, एवं अज्ञान नष्ट हो गया। जिस प्रकार जाग्रतावस्था में स्वप्नज्ञान दूर हो जाता है उसी प्रकार मेरा कर्तृत्वाभिमान, मेरा शत–शत रूप धारण एवं सारा संमोह मेरी ज्ञान दृष्टि से दूर हो गया। मैं अर्जुन हूॅ, यह बोध दूर हो गया। देह बोध से जो अपने पृथक कर्तव्य की धारणा थी,, वह लुप्त हो गई। देह बोध की धारणा तभी तक रहती है, जब तक आत्म्बोध नहीं होता, कर्तव्य के नाना–बोध जीव को व्याकुल किये रहते हैं। उस समय देह, मन और प्राण के चांचल्य जीव को अस्थिर किये रहते हैं। आज माया का वह ताण्डव नृत्य तुम्हारी कृपा से बन्द हो गया है। अतः स्पष्ट है कि ज्ञानयोग माया से निकालकर जीव को उसकी मौलिक स्थिति का ज्ञान कराती है।

जीव को उसकी मूल प्रकृति और स्वरूप से अवगत कराना ही ज्ञानयोग का लक्ष्य है। चूंकि यह बहुत ही दुष्कर कार्य है और कठिनाई से ही नहीं बल्कि बुद्धि से परे का रहस्य है अतः अर्जुन के 'प्रज्ञावादांश्च भाषसे' पर प्रहार करने के लिये कृष्ण को अन्यतम उपचार का प्रयोग करना पड़ा। उसे दिव्यदृष्टि प्रदान करना पड़ी और अपना 'त्वदन्येन दृष्ट पूर्वम्' रूप दिखाना पड़ा। समस्त ज्ञानोपदेश का समाहार करते हुये कृष्ण ने गीता में कहा है कि :–

**'इति तेज्ञान माख्यातं गुह्यादगुह्यतरं माया।**

**विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू।। (18/63)**

**भक्तियोग** – गीता निरंतर अव्याप्त रूप से इस शिक्षा पर जोर देती है कि भगवत्प्राप्ति के साधन का सार ऐसी अनासक्ति और भक्ति है जिससे कर्म निष्कर्म में प्रतिफलित होता है। यज्ञ, दान और तपरूप कर्म चित्तशुद्धि के

साधन है और सच्चा त्याग–संगत्याग और फलत्याग है। यह सात्विकता ही साधक की साक्ष्य होती है जिसका लक्ष्य दुःखनिवृत्ति हैं सांसारिक का जन्म ही दुःख से जुड़ा हुआ है। दुःखनिवृत्ति के लिये पुनर्जन्म से मुक्ति परमावश्यक है। पुनर्जन्म से निजात पाने के लिये ब्रम्हज्ञान ही एक मात्र साधन है।

प्रश्न है कि ब्रम्ह का ज्ञान कैसे हो? केवल जानना या विश्वास करना कि ईश्वर है, चराचर जगत् का रचियता है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है, कोई अर्थ नहीं रखता। हमें उसे देखना एवं अनुभव करना होगा। आत्मा का प्रत्यक्ष होना परमावश्यक है। आँखे उसे नहीं देख सकती, कान सुन नहीं सकते। उसका दर्शन तभी संभव है यदि वह स्वयं हमें दर्शन देने की कृपा करे। हम अनुभव तभी कर सकते हैं जब वह हमें अनुभव करने की शक्ति प्रदान करें। वह शक्ति तभी प्रदान करता है जब उसकी कृपा होती है। वह परम दयालु है। हम उसकी कृपा के पात्र नहीं बन पाते क्योंकि हम वह चाहते ही नहीं हैं। हम चाहते है सांसरिक सुख। यदि उसकी कृपा का संपादन चाहते हैं तो उसके आदेशों का पालन करना होगा। कर्म अत्यावश्यक है। ईश्वर की भक्ति उन्हें ही प्राप्त होती है जो पुण्यकर्मी हैं। इससे इस निष्कर्ष पर पहुॅचते हैं कि कर्म भक्ति प्रदाता है और भक्ति ज्ञानदायी। वे पुण्यकर्मी जिनके कालक्रम में पूर्वजन्मों के कल्मषक्षीण हो जाते हैं। तभी वे स्वस्थ और सुस्थिर चित्त ईश्वर की अर्चना करते हैं। जो साधक ईश्वर की शरणागत होते हैं जहॉ मरण के कष्ट से छुटकारा पाने का यत्न करते हैं, वे ही मुझे पूर्णतः जान सकते हैं। गीता का तो यहॉ तक कथन है कि कर्म अकेला सीधे ज्ञान का साधन नहीं हो सकता। कर्म और ज्ञान के बीच में भक्ति की भूमिका होनी चाहिये। ज्ञान भक्ति के मार्ग से होकर ही लभ्य है। यदि बिना भक्ति के कर्म किया जाता है अर्थात लौकिक ऐषणाओं के लिये किया जाता है तो कर्म भक्ति में समन्वित नहीं हो सकता और ज्ञान प्राप्त ही नहीं होता। अतः ज्ञान लाभ के लिये भक्ति करनी होगी। भक्ति लाभ के लिये कर्म करना है। पहले कर्म, फिर भक्ति और फिर ज्ञान। स्वामी शिवानन्द भक्तियोग को ईश्वरानुभूति का सरलतम मार्ग बताते हुये ईश्वर के अस्तित्व में आस्था को भक्ति की आधारशिला मानते हैं।

**समीक्षा** – दार्शनिक अपनी रूचि और स्वभाव के अनुसार गीता में किसी एक योग की प्रधानता दर्शाने के पक्षधर हो जाते हैं किन्तु गीता में ऐसे किसी योग की एकदेशीयता वर्णित नहीं है। गीता दुर्गान्तर को सुगमतर बनाती चलती है। इसलिये एक ओर वह ''द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्त'' कहती है तो दूसरी ओर ''एक सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति'' कहकर उभय मार्गो का एक ही तत्व तक पहुंचाने वाला बता देती है। 'सर्व कर्माखिलं ब्रम्हज्ञाने परिसमाप्यते' का मंतत्व भी एकदेशीयता का विरोध करती है।

अनासक्ति और भक्ति में ही भगवत प्राप्ति का साधन मार्ग माना गया है। इससे ही कर्म में नैष्कर्म्य की लब्धि होती है यज्ञ–दान तप ऐसे कर्म हैं जो चित्तशुद्धि के साधन–मार्ग हैं। अतः इनका परित्यागकिसी भी स्थिति में नहीं किया जाना चाहिये। स्पष्टतः गीता का योग मार्ग आत्मानुभव का मार्ग है तथैव आत्मा स्वरूप में अवस्थिति अनुभव और आनन्द की परिणति है।

गीता योगस्वरूपता का 'समत्वं योग उच्यते' और 'योगः कर्मसु कौशलम्' कहकर जिस कौशल की विविक्षा करती है वह कौशल अनासक्ति और निजता के विसर्जन की संज्ञा है। अस्मिता विसर्जन से बंधनकारी कर्म मोक्षदायक कर्म बन जाते हैं।

उनके मोहनाश के लिये गीता भक्तिमार्ग का प्रवर्तन करती है और भक्तियोगी को 'युक्तम' संज्ञित करते है। विभूतियोग और विश्वरूप दर्शन योग इसी 'युक्तम' में समाहित है। अकेला भक्तियोगी ही परमात्मा के विश्वरूप को देखने में समर्थ है। यह भक्तियोग एक ओर कर्मयोग से तो दूसरी ओर ज्ञानयोग से संबद्ध हो जाता है। गीता का कथन कि जो पुरूष सब भूतो में द्वेष भाव रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी करणासक्ति और ममता से रहित अहंकार रहित, सुख–दुःखों को प्राप्ति में समभाव रखता है, क्षमाशील है, वह संतुष्ट, दृढ निश्चियी 'मय्यिर्पितमनोबुद्धि' वाला भक्त ही मुझे प्रिय है ज्ञानयोग की भक्तियोग में परिसमाप्ति लक्षित है तो कर्म की परिसमाप्ति भी ज्ञान में होती है।

'लोकेउ स्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानध' में ज्ञानयोग और कर्मयोग, दो ही निष्ठाएं मानी गई हैं किन्तु यह कथन कर्मयोग में भक्ति को मानकर ही मानी गई हैं और 'ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचदात्मानमात्मना। अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे' में ध्यान (भक्ति) योग, ज्ञानयोग, कर्मयोग तीन साधन बतलाए गए हैं।

स्वामी रामसुखदास जी ने इस आधार पर कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग की पारस्परिकता का सरल और सहज विवेचन किया है जो इन तीनों को सुस्पष्ट विवेचित करता है –

| **कर्मयोग** | **भक्तियोग** | **ज्ञानयोग** |
|---|---|---|
| कर्तव्य कर्म करते हुये अन्तः करण को निर्विकार रखना कर्मयोग की समता है। | भगवंच्चिन्तन करते हुये भगवान के विधान में सन्तुष्ट होकर निर्विकार रहना भक्तियोग की समता है। | एक सच्चिदानन्द परमात्मा की ही सत्ता समझते हुए निर्विकार रहना ज्ञानयोग की समता है। |

प्रायः लोग मानते है कि कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग पृथक–प्रथक मार्ग हैं किन्तु उपरोक्त विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि कर्म, भक्ति, ज्ञान परस्पर विरोधी नही है। अपितु तीनों का लक्ष्य जीव की दुःख निवृत्ति से है और तीनों में किसी एक की साधना सम्पूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक न होते हुये सम्पूरकत्व की भूमिका निभाते हैं।

आसक्ति रहित कर्म समर्पण का भाव जाग्रत करता है, समर्पण से चंचलता में कमी एवं एकाग्रता में वृद्धि होती है और समभाव आने लगता है समभाव ज्ञान प्राप्ति में निश्चित रूप से सहायक है।

अतः अतिश्योक्ति नहीं है कि कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग एक दूसरे के पूरक हैं और साध्य एवं साधन की भूमिका का निर्वहन उत्कृष्टता के साथ करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का साधना पक्ष, शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची :–**


1. रामसुखदास, स्वामी, गीतादर्पण, गीता प्रेस गोरखपुर– 1980
2. अरविन्द, श्री, गीता प्रबंध, श्री अरविन्द सोसायटी पांडिचेरी–1954
3. प्रेम, कृष्ण, भगवद्गीता का योग, पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1984
4. प्रभुपाद, स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता (यथारूप), भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट मुम्बई, 2002
5. राधाकृष्ण, एस., श्रीमदभगवद् गीता, राजपाल एंड संस दिल्ली, 1972
6. सान्याल, भुपेन्द्रनाथ, श्रीमद्भगवद गीता (1, 2, 3 भाग), गुरूधाम प्रकाशन बिहार–2005
7. पोद्दार, हनुमान प्रसाद, गीता चिन्तन – गीतापेस, गोरखपुर
8. रामसुखदास, स्वामी गीता परिचय, गीता प्रेस गोरखपुर